

## लक्ष्य की अस्थिरता से शिक्षा के सभी सोपान अस्थिर हो जाते हैं



**शि**क्षा-संस्थानों में राष्ट्र बनता है, अतः आश्चर्य का विषय नहीं कि भारतीय मनीषा ने, प्रत्येक अतीत युग में, शिक्षा के क्षेत्र को विशेष सम्मान की दृष्टि से देखा तथा तत्कालीन शासन-व्यवस्था के नियंत्रण से उसे मुक्त रखा। सहस्रों वर्ष पूर्व की शैक्षणिक उपलब्धियों का आज क्या उपयोग है, यह जिज्ञासा भी स्वाभाविक है। यह निर्विवाद सत्य है कि हम अतीत युगों के जीवन और परिस्थितियों की आवृत्ति नहीं कर सकते। जब एक बीते क्षण, एक तीव्र संवेदन तक को लौटा लेना संभव नहीं है, तब सुदूर अतीत में जीने का प्रश्न कल्पनातीत है। परंतु मानव के अतीत, वर्तमान और भावी संवेदनों को संभालने वाला समय तो अखंड ही रहता है। अपनी धरती की गहराई में जड़े रखने वाले पौधे किसी भी दिशा से आने वाले पवन के उष्ण या शीतल झोकों से खेल लेते हैं, वर्षा की झड़ी और कठिन धूप को भेंट लेते हैं। यदि वे अपनी धरती का आधार छोड़ दें, तो न मलयसमीर उन्हें जीवित रख सकेगा और न वर्षा का अमृत जल। धनुष पर बाण को संधान कर जब तक उसे पीछे कान तक नहीं खींचा जाता, तब तक उससे लक्ष्यवेध संभव नहीं होता। पीछे का पग धरती पर जमाये बिना न आगे का उठाया जा सकता है और न एक डग आगे बढ़ा जा सकता है।

गत युगों की उपलब्धियों के प्रति उपेक्षा-भाव को, अपनी भावी प्रगति की शपथ मान कर हमने अपने आपको दिग्भ्रंत ही किया है, क्योंकि बिना वर्तमान के अतीत गतिहीन है और अतीत से विच्छिन्न वर्तमान दिशा-निर्देशहीन हो जाता है। शिक्षा किसी भी राष्ट्र का मेरुदंड कही जा सकती है। वह अतीत युगों की उपलब्धियों तथा वर्तमान परिस्थितियों का संधिस्थल ही नहीं, ऐसा आलोक भी है, जिसमें भविष्य की रूपरेखा निखरती और स्पष्ट से स्पष्टतर होती चलती है। जिस प्रकार शरीर में हृदय सब अंगों को स्वस्थ रक्त पहुँचाने का कार्य करता है, उसी प्रकार शिक्षा-क्षेत्र, समाज, शासन, विज्ञान, कला, साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में नवीन प्रतिभाएं भेजता है। यदि शिक्षा द्वारा पहुँचाया गया नवीन रक्त स्वस्थ है तो सभी-क्षेत्र स्वस्थ और क्रियाशील रहते हैं। यदि नवीन रक्त में व्याधियों के कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं, तो राष्ट्र-जीवन के सभी क्षेत्र सांघातिक रूप से पीड़ित हो उठते हैं।

प्रबुद्ध राष्ट्र की जीवन-पद्धति में शिक्षा-क्षेत्र का उत्तरदायित्व, विद्वानों, चिंतकों और आचार्य कुलों पर रहता है। भारत के तत्वदर्शी चिंतकों ने जीवन के किसी भी क्षेत्र या लक्ष्य को इतनी सावधानी से गठित नहीं किया है, जितनी शिक्षा क्षेत्र के गठन में मिलती है। कारण स्पष्ट है, इस क्षेत्र में मानव का दुहरा निर्माण होता है। अन्य क्षेत्रों में जब वह पहुँचता है, तब बुद्धि और हृदय से प्रबुद्ध और संवेदनशील सदस्य के रूप में प्रतिष्ठित होने योग्य बन चुकता है, परंतु शिक्षा के क्षेत्र में वह समस्त अनगढ़ पशुवृत्तियों और मानवीय संभावनाओं के साथ ही प्रवेश करता है। उसकी पशुवृत्तियों को संयमित तथा मानवीय संभावनाओं को साकार बनाने का कठिन कार्य जहाँ होता है, उस क्षेत्र की उपेक्षा मानव समाज को बर्बरता की ओर लौटा देती है। विद्या का लक्ष्य व्यक्ति और समष्टि दोनों को सामंजस्यसूत्र में बांध कर संपूर्णता देना है तथा शिक्षा हृदय और बुद्धि के परिष्कार और समन्वय द्वारा को लक्ष्य तक पहुँचाने की क्षमता प्रदान करती है। शिक्षा अपने सीमित अर्थ में जीवन के लिए तैयारी मानी जा सकती है, परंतु व्यापक अर्थ में वह जीवन का चरम उद्देश्य ही रहेगी। इन सीमित और व्यापक अर्थों में कोई अंतर्विरोध संभव नहीं है, क्योंकि सीमित, व्यापक अर्थ में अंतर्भूत रहता है। मनुष्य व्यापक समष्टि का अंग और विश्व नागरिक हो कर भी किसी देश-विशेष का नागरिक और समाज-विशेष का अंग होता है और इस नाते विशेष कर्तव्यों तथा अधिकारों से घिरा रहता है। विसंगतियों तब उत्पन्न होती हैं, जब शिक्षा निरुद्देश्य तैयारी मात्र रह जाती है, क्योंकि वह परिणामहीन क्रियाशीलता है। जिस प्रकार नींव की कंपन के साथ समस्त भवन हिल जाता है, उसी प्रकार उद्देश्य या लक्ष्य की अस्थिरता से शिक्षा के सभी सोपान अस्थिर हो जाते हैं। शिक्षा के उच्च स्तर पर लक्ष्यहीनता का परिणाम अधिक सांघातिक हो, यह स्वाभाविक है। शैशव में व्यक्तित्व अविकसित रहता है, अतः लक्ष्य के प्रश्न अनदेखे कर दिये जाते हैं, किशोरावस्था में व्यक्तित्व निर्माण के क्रम में रहता है, अतः उसकी परिणति के संबंध में विचार नहीं किया जाता, परंतु कर्मक्षेत्र के प्रवेश द्वार पर जब शरीर से अस्वस्थ और मन हताश पहुँचता है, तब जीवन और समाज दोनों की स्थिति संकटापन्न हो जाती है।

**महादेवी वर्मा**

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के दीक्षांत समारोह (22 फरवरी, 1969)  
में दिये गये भाषण का अंश (धर्मयुग 23 मार्च, 1969)